वैश्विक आर्थिक हालात : एक टिप्पणी

विश्व आर्थिक संकट इस समय आठवें वर्ष में है। इस बीच साम्राज्यवादियों और उनकी संस्थाओं द्वारा इस संकट से निकलने की कई बार घोषणाएं हो चुकी हैं। हर बार उनकी घोषणाएं खुशफहमी साबित हुई हैं।

ऊपरी तौर पर विश्व के सकल उत्पाद में और पिछड़े पूंजीवादी देशों में कुछ बेहतर वृद्धि दर दिखाई देती है। लेकिन चीन जैसे कुछ अपवादों का छोड़कर यह वृद्धि दर भी प्राकृतिक संसाधनों की बेतहाशा लूट जैसी चीजों पर टिकी है जो अपनी बारी में और भीषण संकट के लिए पूर्वाधार तैयार कर रही है।

सकल उत्पाद में वृद्धि दर, व्यापार, बेरोजगारी, सरकारी और गैर सरकारी ऋण, बैंकों की खराब परिसम्पत्तियां, बढ़ती सट्टेबाजी सभी क्षेत्रों में हालात खराब या बेहद खराब बने हुए हैं और अभी से एक नये तथा और ज्यादा गंभीर वित्तीय संकट की बातें होने लगी हैं। ये बातें अनवरत कयामत की घोषणा करने वाले बुद्धिजीवी ही नहीं नामी-गिरामी साम्राज्यवादी संस्थाएं कर रही हैं चाहे उनकी भाषा कितनी कपटपूर्ण क्यों न हो।

आइये, इन मसलों पर थोड़ी विस्तार से चर्चा की जाये।

1996-2006 का दस सालों का काल कोई बहुत स्थिरता और समृद्धि का काल नहीं था। इसी काल में 1997-98 का दक्षिण-पूर्व एशिया का गंभीर संकट आया जो वित्तीय क्षेत्र से शुरू होकर इस क्षेत्र के कई देशों (जिन्हें तब एशियाई बाघ कहा जाता था) की अर्थव्यवस्थाओं के पूर्ण विध्वंस तक ले गया। इसी काल में रूस की अर्थव्यवस्था दिवालिया होने के कगार पर पहुंची तथा अर्जेन्टीना की अर्थव्यवस्था तो दिवालिया हो ही गई। इसी काल में डॉटकाम का बुलबुला फूटा तथा 2001-02 में वैश्विक अर्थव्यवस्था मंदी की शिकार हुई।

इस सब के बावजूद इस काल में वैश्विक अर्थव्यवस्था की औसत सालाना वृद्धि दर 3.9 थी। यह विकसित अर्थव्यवस्थाओं में 2.8, यूरो क्षेत्र में 2.4 तथा सं.रा. अमेरिका में 3.4 प्रतिशत सालाना थी। लेकिन संकट के सात साल बाद हालात क्या हैं? इसे तालिका-1 दिखाती है।

तालिका -1 विश्व उत्पाद में वृद्धि (प्रतिशत)

देश	1996-2006	2008-11	2012	2013	2014	2015	2016
विश्व	3.9	1.9	2.4	2.5	2.6	3.1	3.3
विकसित अर्थव्यवस्था	2.8	0.1	1.1	1.2	1.6	2.1	2.3
सं.रा. अमेरिका	3.4	0.2	2.3	2.2	2.3	2.8	3.1
जापान	1.1	-0.7	1.5	1.5	0.4	1.2	1.1
यूरोपीय संघ	–	-0.1	-0.4	0.0	1.3	1.7	2.0
EU-15	–	-0.2	-0.5	-0.1	1.2	1.5	1.9
यूरो क्षेत्र	2.4	-0.2	-0.8	-0.5	0.8	1.3	1.7
रूस	4.3	1.4	3.4	1.3	0.5	0.2	1.2
चीन	9.2	9.6	7.7	7.7	7.3	7.0	6.8
भारत	6.7	7.3	4.7	5.0	5.4	5.9	6.3
दक्षिण अफ्रीका	3.5	2.2	2.5	1.9	2.0	2.7	3.3
ब्राजील	2.6	3.7	1.0	2.3	0.3	1.5	2.4

स्रोत: UN WESP-2015, Pre Realese, Table-I.1 और BIS Annual Report-2014, Table Annex III.1

तालिका दिखाती है कि 2008-11 के वर्षों में वैश्विक वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत रही बाद के तीन सालों में भी यह 2.4, 2.5 और 2.6 प्रतिशत ही रही। ये दरें 3.9 प्रतिशत से बहुत नीचे हैं।

इसी तरह सं.रा.अमेरिका में वृद्धि दर अभी भी तब की केवल तीन चौथाई है जबकि यूरो क्षेत्र में तो एकदम ही बुरा हाल है। सारी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में समग्र तौर भी यह बेहद बुरी है जो 1996-2006 के औसत 2.8 प्रतिशत के मुकाबले 2008-11 में 0.1 प्रतिशत रहने के बाद 2012, 13 व 14 में क्रमशः 1.1, 1.2 व 1.6 प्रतिशत रही।

इस समग्र स्थिति से भारत व चीन जैसे देश भी नहीं बचे हैं। इनकी वृद्धि दर भी पहले के मुकाबले काफी नीचे गई है।

अर्थव्यवस्था में इस नीची विकास दर के कारण अब साम्राज्यवादी हलकों में यह बात होने लगी है कि संकट के पहले की विकास दर को शायद अब हासिल नहीं किया जा सकता, कि अर्थव्यवस्थाएं अब नीची विकास दर की प्रवृत्ति का शिकार हो गयी हैं। यह सब कह कर केवल इस तथ्य को ढंकने का प्रयास किया जा रहा है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था अभी भी गंभीर संकट का शिकार है तथा जो भी वृद्धि नजर आ रही है वह सरकारों द्वारा उठाये गये असाधारण कदमों का परिणाम है जो अपनी बारी में और ज्यादा समस्याओं को जन्म दे रही है तथा और भी बड़े संकट का पूर्वाधार तैयार कर रही है।

संकट का जारी रहना बेरोजगारी के आँकड़ों में भी तीखे ढंग से व्यक्त हो रहा है।

तालिका-2

बेरोजगारी की दर (प्रतिशत में)

देश	2007	2012	2013	2014	2015
विश्व	5.5	6.0	6.0	6.1	6.1
G-20 अर्थव्यवस्थाएं	5.1	5.7	5.8	5.8	5.8
G-20 विकसित अर्थव्यवस्थाएं	5.7	8.4	8.4	8.4	8.3
G-20 उभरती अर्थव्यवस्थाएं	4.9	4.9	5.0	5.1	5.1
विकसित अर्थव्यवस्थाएं	5.8	8.6	8.6	8.6	8.4
कनाडा	6.0	7.2	7.1	7.0	7.0
जापान	3.9	4.3	4.1	4.0	4.0
सं.रा. अमेरिका	4.7	8.2	7.5	7.2	6.8
यूरोपीय संघ	7.2	10.5	11.0	11.1	11.1
फ्रांस	8.0	9.9	10.5	10.9	10.8
जर्मनी	8.6	5.4	5.3	5.3	5.4
इटली	6.1	10.7	12.2	12.6	12.7
यू.के.	5.4	8.0	7.5	7.3	7.2
केन्द्रीय व दक्षिण-पूर्वी यूरोप	8.2	8.0	8.2	8.3	8.2
रूसी फेडरेशन	6.0	5.5	5.8	5.8	5.8
तुर्की	10.3	9.2	9.9	10.0	9.7
मध्य पूर्व	10.2	10.9	10.9	11.0	10.9
उत्तरी अफ्रीका	11.1	12.1	12.2	12.2	12.1
सब सहारा अफ्रीका	7.5	7.6	7.6	7.6	7.5
दक्षिण अफ्रीका (देश)	22.3	25	25.3	25.2	25.1
लैटिन अमेरिका	6.9	6.6	6.5	6.5	6.5

स्रोत: ILO, Global Employment Trends, 2014 Table.1

तालिका-2 दिखाती है कि वैश्विक स्तर पर और खासकर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बेराजगारी की दर में जरा भी कमी नहीं आ रही है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में तो यह संकट से पहले की बेरोजगारी की दर से डेढ़ गुने पर बनी हुई है।

बेरोजगारी के मामले में बात केवल इतने तक सीमित नहीं है। आई.एल.ओ. से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक रिपोर्ट तक सभी जगह इस बात को रेखांकित किया गया है कि संकट के इस समय में स्थाई रोजगारों में कमी आई है। इसका स्थान अस्थाई तथा अंशकालिक रोजगार ने लिया है। इसी के साथ आबादी में काम करने वालों और काम चाहने वालों की संख्या घटी है यानी बहुत सारे लोग निराश होकर काम की तलाश करना बन्द कर चुके हैं। युवकों में बेरोजगारी बढ़ी है और यूरोप के कुछ देशों में यह चालीस-पचास प्रतिशत तक पहुंची है।

रोजगार की यह स्थिति किसी भी अन्य आँकड़े के मुकाबले ज्यादा बेहतर ढंग से अर्थव्यवस्था के हालात को अभिव्यक्त करती है। सामान्य अवस्था में अर्थव्यवस्था में सुधार का मतलब उत्पादन एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि तथा उनमें लगे लोगों की संख्या में वृद्धि होता है। लेकिन यदि बेरोजगारी की दरों में कोई गिरावट नहीं हो रही है तो इसका मतलब या तो अर्थव्यवस्था में कोई सुधार नहीं है या फिर ऐसा सुधार है जिसका कोई आधार नहीं है। जब आज इतने बड़े पैमाने पर गैर-उत्पादक गतिविधियां हो रही हों तथा उनमें से ढेर सारी सट्टेबाजी की प्रकृति की हों तो अर्थव्यवस्था में कुछ ऊपरी सुधार दीख सकता है।

बेरोजगारी का सीधा सम्बन्ध आबादी के बहुलांश की क्रय शक्ति से है। बड़े पैमाने की बेरोजगारी न केवल बेरोजगारों की क्रय शक्ति को छीनती है बल्कि रोजगारशुदा लोगों की भी क्रय शक्ति घटा देती है। क्योंकि बेरोजगारी के दबाव में उनकी सौदेबाजी की क्षमता घट जाती है। तथा उनकी तनख्वाहें कम हो जाती हैं। बहुत कम कर के आंके गये आकलनों में भी यूरोप में तनख्वाहों में संकट के दौरान तीन प्रतिशत की कटौती दिखी। इन्हीं सब कारणों से भुखमरी के आँकड़ों में दो प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। ऐसे में उत्पादन वितरण में वृद्धि दर की बढ़ोत्तरी की उम्मीद करना केवल खुशफहमी ही हो सकती है। यह तब और है जब यह सब तात्कालिक परिघटना न होकर पिछले तीन-चार दशकों की लम्बी परिघटना हो और वर्तमान संकट के मूल में हो।

जैसा कि पहले कहा गया है अर्थव्यवस्थाओं में जो भी बेहतरी के संकेत दीख रहे हैं वे मूलतः सरकारों के प्रयासों के नतीजे हैं और इन प्रयासों ने और भी बड़े संकटों की आधारभूमि तैयार की है।

2008 में जब संकट गहराया तभी से सरकारों ने कुछ कदम उठाये । ये समूची अर्थव्यवस्था के विध्वंस से बचाव के लिए जरूरी थे। सरकारों ने बड़ी मात्रा में पैसा बाजार में झोंका। इसे सरकारों ने सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद के जरिये किया। इसी के जरिये सरकारों ने संकट में पड़े वित्तीय संस्थानों को बचाया। सरकारों के निर्देश पर बड़ी मात्रा में यही काम केन्द्रीय रिजर्व बैंकों ने किया। इसी के साथ सरकारों ने अर्थव्यवस्था में गति पैदा करने के लिए पैसा झोंका और इसके लिए वित्तीय घाटे की भी परवाह नहीं की। तीसरा कदम ब्याज दरों को घटाना था। जिससे व्यवसाय के लिए कर्ज सस्ती दरों पर उपलब्ध हो। 2008 से अब तक विकसित देशों में ब्याज दरें वास्तव में (-) 1 प्रतिशत से भी नीचे हैं (केन्द्रीय बैंकों से वित्तीय संस्थाओं/बैंकों द्वारा उधार लेने की ब्याज दर)।

इन सबका पहला नतीजा तो सरकारों पर विशाल कर्जे के बोझ के रूप में सामने आया। तालिका- 3 इसे दिखाती है :

तालिका - 3			
कुल ऋण (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)			
देश	2007	2014	परिवर्तन
कनाडा	70	94	24
फ्रांस	73	115	42
जर्मनी	66	84	22
ग्रीस	119	189	70
आयरलैण्ड	29	133	104
इटली	117	147	30
जापान	162	230	68
पुर्तगाल	76	141	65
स्पेन	43	108	65
यू.के.	47	102	55
सं.रा. अमेरिका	64	106	42

स्रोत: BIS, Annual Report-2014, Annex Table-III.3

तालिका -3 दिखाती है कि सभी देशों की सरकारों का कर्ज संकट के सात सालों के दौरान डेढ़ से दो गुना तक बढ़ गया (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)। कुछ देशों, मसलन आयरलैण्ड, यूनाइटेड किंगडम और स्पेन के मामले में तो यह दो गुने से भी ज्यादा बढ़ गया। जापान में यह बढ़ते हुए दौ सौ तीस प्रतिशत तक जा पहुंचा है।

इसी तरह केन्द्रीय बैंकों की परिसम्पत्तियां बढ़ते हुए बीस हजार अरब डॉलर यानी वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद के तीस प्रतिशत तक जा पहुंची हैं। अकेले अमेरिका की सरकार ने क्वांटिटेटिव इजिंग के नाम पर करीब चार हजार अरब डॉलर बाजार में झोंके हैं। इसके द्वारा संकट ग्रस्त बैंकों व वित्तीय संस्थानों से परिसम्पत्तियां खरीदी गईं और उन्हें छापा गया डॉलर दिया गया।

इस सबका परिणाम क्या निकला? क्या इससे अर्थव्यवस्था में कोई गति आई? नहीं। इसके बदले सारा पैसा सट्टा बाजार में चला गया। सट्टेबाजी की हालत को शेयर बाजार के ये आँकड़े बयां करते हैं :

तालिका - 4							
शेयर बाजार							
देश	सूचकांक	संकट से पहले उच्चतम		संकट के बाद न्यूनतम		हाल में	
		सूचकांक	तारीख	सूचकांक	तारीख	सूचकांक	तारीख
सं.रा.	डाऊजोन्स	14165	9.10.2007	6443	6.3.2009	17533	10.12.2014

अमेरिका							
जापान	निक्की	18300	26.2.2007	7055	10.3.2009	17257	11.12.2014
यू.के.	एफ.टी.एस.ई.	6730	15.6.2007	3512	3.3.2009	6483	11.12.2014
जर्मनी	डैक्स	8152	13.7.2007	3589	9.3.2009	9847	11.12.2014
भारत	सेनसेक्स	20873	8.1.2008	8510	27.10.2008	27602	11.12.2014

स्रोत: Wikipeadia and Moneycontrol.com

तालिका दिखाती है कि जहां जापान, और यू.के. का शेयर बाजार संकट पूर्व के स्तर को छू रहा है वहीं सं.रा.अमेरिका और भारत का शेयर बाजार उस स्तर से बहुत आगे निकल गया है।

वास्तविक उत्पादन-वितरण संकटग्रस्त है। साम्राज्यवादी देशों में वह अक्सर ही संकट से पहले के स्तर से भी नीचे है। लेकिन शेयर बाजार छलांगे लगाता हुआ आगे बढ़ता ही जा रहा है।

असल में पिछले सात सालों में यही हुआ है। 2008 में सरकारों ने भारी मात्रा में पैसा झोंककर वित्तीय संस्थाओं और बैंकों को बचाया लेकिन संभलते ही उन्होंने फिर बड़े स्तर की सट्टेबाजी शुरू कर दी, इसके बावजूद कि वे गले तक खराब परिसम्पत्तियों के अंबार में डूबे हुये थे। भयंकर संकटग्रस्त बैंक बड़े पैमाने का मुनाफा कमाने लगे और उनके बड़े अधिकारी भारी-भरकम तनख्वाहें अपनी जेबों में डालने लगे।

सस्ती ब्याज दरों और सरकारों द्वारा उपलब्ध कराये गये पैसे का परिणाम सारी दुनिया में बढ़ती सट्टेबाजी में हुआ है। यदि भारत का शेयर बाजार उछल रहा है तो उसके पीछे भी यही कारण है। यह आश्चर्यजनक किन्तु सत्य है कि पिछले सालों में गैर वित्तीय संस्थानों ने बड़ी मात्रा में कर्ज वित्तीय संस्थानों को दिये हैं। यह उलटी गंगा क्यों बह रही है? यह इसलिए कि गैर वित्तीय संस्थान बाजार से पैसा उगाह रहे हैं और फिर ऊंची ब्याज दरों पर वित्तीय संस्थानों को दे रहे हैं। भारत जैसे पिछड़े देशों की कंपनियों ने पिछले सालों में साम्राज्यवादी देशों में करीब दो हजार अरब डॉलर की उगाही की है। इसका उन्होंने क्या किया? क्या इसे उत्पादक गतिविधियों में लगाया? नहीं। स्वयं बैंक फॉर इंटरनेशनल सटलमेन्ट के अनुसार इसे उन्होंने अपने शेयरों को वापस खरीदने तथा अधिग्रहण और विलय में खर्च किया। बचा हुआ पैसा उन्होंने वित्तीय संस्थानों और बैंकों में जमा किया।

जमीन/मकान आधारित परिसम्पत्तियों के अभी भी संकटग्रस्त होने के चलते इस तरह की परिसम्पत्तियों का बाजार आज अपेक्षाकृत मंदा है। पर इसके बदले शेयर बाजार, सरकारी कर्जों, सूचकांक आधारित सट्टेबाजी तथा माल बाजार में सट्टेबाजी खूब जम कर हो रही है। सरकारी कर्जों का भयंकर अंबार लग जाने के कारण इनका बहुत बड़ा बाजार हो गया है और इस पर बहुत बड़े पैमाने की सट्टेबाजी हो रही है। स्वयं सरकारों पर सट्टेबाजी होने के कारण यह किसी भी सट्टेबाजी से अधिक घातक है। दुनिया भर का वित्तीय बाजार अधिकाधिक केन्द्रीय बैंकों पर निर्भर होता जा रहा है और उन्हें सट्टेबाजी के दुष्चक्र में समेट रहा है।

जब 2008-09 में विश्व आर्थिक संकट चरम पर था तब साम्राज्यवादी देशों ने G-20 की बैठक कर कुछ मूलभूत कदम उठाने की बातें की थीं। इनमें से कुछ इस प्रकार थीं : बड़े पैमाने पर छोटी अवधि के ऋण उगाह कर उतने ही बड़े पैमाने की सट्टेबाजी करने की प्रवृत्ति पर रोक लगायी जायेगी तथा ऐसे वित्तीय संस्थाओं/बैंकों पर लगाम कसी जायेगी। बड़े पैमाने पर मौजूद निजी और सरकारी कर्जों को कम किया जायेगा। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतान असंतुलन को ठीक किया जायेगा। जो अपनी बारी में सट्टेबाजी को बढ़ाता है। आज छः-सात साल बाद इन सबकी क्या स्थिति है?

जैसा कि पहले रेखांकित किया गया है, इस बीच सरकारी और निजी दोनों कर्ज बड़ी मात्रा में बढ़ गये हैं। निजी गैर-वित्तीय क्षेत्र के कर्जों में संकट की शुरुआत से अब तक करीब 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसका एक बड़ा हिस्सा सट्टेबाजी से संबंधित है। सरकारी कर्जों की हालत तो तालिका-3 बयां ही कर चुकी है।

जहां तक वित्तीय संस्थानों और बैंकों की बात है उनके वास्तविक हालात में सुधार नहीं हुआ है। बहुत बड़े पैमाने पर खराब परिसम्पत्तियां उन पर लदी हुई हैं, यह इसके बावजूद कि सरकारों ने तथा केन्द्रीय बैंकों ने बड़े पैमाने पर इनकी खरीददारी की है। संकट की शुरुआत के सात साल बाद भी यह स्थिति बहुत गंभीर है। लेकिन मामला तब और गंभीर हो जाता है जब पता चलता है कि ऐसी अवस्था में भी ये संस्थान और पैसा उगाह कर सट्टेबाजी में लगे हुए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर असंतुलन की बात करें तो इसमें थोड़ी गिरावट हुई है। वैश्विक सकल उत्पाद के करीब छः प्रतिशत से घट कर यह करीब साढ़े तीन प्रतिशत तक हो गया है। लेकिन यह मूलतः मांग को गिराकर ही हासिल किया गया है। यानी जनता की घटती क्रय शक्ति, जनता की बढ़ती बदहाली ने ही वैश्विक असंतुलन को थोड़ा कम किया है। पूंजीपति वर्ग को यह चाहे जितना भाये, यह किसी भी तरह सराहनीय बात नहीं है।

जैसा कि पहले कहा गया है, जमीन/मकान आधारित परिसम्पत्तियों में सट्टेबाजी भले ही थोड़ी कम हो पर अन्य मामलों में यह बढ़ी ही है। इस तरह कुल मिलाकर हालात 2007-08 से तुलनात्मक तौर पर बेहतर होने के बदले बदतर ही हुए हैं।

यहां एक चीज और गौरतलब है। 2007-08 में संकट के चरम पर भारत-चीन की अर्थव्यवस्थाएं उस तरह उसका शिकार नहीं हुईं। इनके शेयर बाजारों पर तो असर पड़ा पर आम तौर पर इनका आंतरिक वित्त बाजार किसी गंभीर संकट का शिकार नहीं हुआ।

परन्तु अब छः-सात साल बाद यह बात नहीं कही जा सकती। अब भारत- चीन का वित्तीय बाजार भी पर्याप्त मात्रा में संकट की परिधि में आ चुका है। कोई भी वित्तीय झंझावात इसे अछूता नहीं छोड़ेगा।

भारत की बात करें तो पिछले सालों में भारत के वित्तीय बाजार को नियंत्रण से मुक्त किया गया है। बीमा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के निवेश की सीमा बढ़ाई गई है। बैंकों के क्षेत्र में निजी गैर बैंकिंग कंपनियों को बैंक खोलने की इजाजत दी गयी है। सरकारी बैंकों में ज्यादा पूंजी निवेश के नाम पर सरकारी निवेश को कम किया गया है और उन्हें विदेशों में भी पैसा उगाहने की इजाजत दी गई है। गैर वित्तीय भारतीय कंपनियों ने विदेशों में बड़े पैमाने पर पूंजी की उगाही की है, जिसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सारा उत्पादक गतिविधियों के लिए है। यह सारा कुछ न केवल भारतीय वित्तीय बाजार को वैश्विक बाजार से ज्यादा एकीकृत कर देता है बल्कि वह उसे संकटों के लिए ज्यादा सुग्राही भी बना देता है।

बात केवल वित्त बाजार तक सीमित रहती तो भी गनीमत थी। उत्पादन -वितरण के कई हिस्सों में यह वित्तीय बाजार न केवल उछाल की बल्कि सट्टेबाजी की बड़ी ऊंचाइयां पैदा कर रहा है। जमीन/मकान के कारोबार का बड़ा हिस्सा इससे सीधा सम्बद्ध है और 'उभरती अर्थव्यवस्था' का अभिन्न हिस्सा है।

यही हाल चीन का भी है। पिछले समयों में चीन के वित्त बाजार की शोचनीय स्थिति की लगातार खबरें आती रही हैं। दो-तीन बड़ी कम्पनियों के दिवालिया होने के बाद तो यह चर्चा-ए-आम हो गया। इस तरह की बातें हो रही हैं कि चीन में इस समय हालात उसी ओर बढ़ रहे हैं जैसे 2006-07 में सं.रा. अमेरिका और यूरोप में थे। कंपनियों का बड़े पैमाने पर कर्जों में डूबा होना तथा जमीन/मकान के कारोबार का अतिशय विस्तार इसमें प्रमुख चीजें हैं।

यदि भविष्य के वित्तीय भूचाल में भारत और चीन जैसे देश भी शामिल हो जाते हैं तो हालात पर काबू पाना बेहद मुश्किल हो जायेगा। वित्त बाजार और सरकारों की जो स्थिति है उसमें इस भूचाल की कल्पना मात्र से वित्त बाजार सिहर उठता है। 15 अक्टूबर को अमेरिका में थोड़ी सी बुरी खबर (मांग में कमी) आने के बाद वित्त बाजार में जो दहशत का माहौल दिखा वह इसी की बानगी है। उस दिन अमेरिकी सरकार की 10 साल की प्रतिभूतियों पर ब्याज दर में 0.35 प्रतिशत की गिरावट आ गई। ऐसी गिरावट सितंबर-अक्टूबर 2008 में भी देखने को नहीं मिली थी जब वित्तीय संकट चरम पर था।

इस दहशत का वाजिब कारण है। 2008 से अब तक सरकारें वित्त बाजार को संभालती आई हैं। लेकिन अब ठीक इसी कारण उनकी ऐसा कर पाने की क्षमता चुक गई है। उनकी हिलने-डुलने की गुंजाइश बहुत कम बची है। पहले ही गले तक कर्ज में डूबी सरकारें और कितने कर्ज का बोझ उठा सकती हैं? केन्द्रीय बैंक और कितनी परिसम्पत्तियां अपने ऊपर लाद सकते हैं? पहले शून्य से नीचे पहुंची ब्याज दरों को और कितना घटाया जा सकता है? ऊपर से तुर्रा यह कि दुनिया भर के वित्त व बैंक संस्थान पहले से संकटग्रस्त है पर भयानक नशे के आदी व्यक्ति की तरह और नशा किये जा रहे हैं।

दुनिया भर के सारे साम्राज्यवादी और उनके संस्थान इस गंभीर स्थिति से पूरी तरह से वाकिफ हैं पर इस दिशा में कुछ कर पाने में अक्षम हैं। ऐसे में वे उसी दिशा में और बढ़ रहे हैं जिसने संकट को जन्म दिया था और गहराया था।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, ओ.ई.सी.डी. तथा बैंक फॉर इंटरनेशनल सटलमेन्ट इत्यादि सभी यह कह रहे हैं कि रास्ता एक ही है-ढांचागत सुधार का। यह वही ढांचागत सुधार है जो 1970 के दशक में उदारीकरण का दौर शुरू होने के साथ ही सारी दुनिया में लागू किया गया है और जिसका अंतिम परिणाम था वर्तमान संकट। इस कोड वर्ड का मतलब है पूंजी को और लूट की छूट देना, मजदूर वर्ग एवं अन्य मेहनतकश जनता की हालत को नीचे गिराकर पूंजी का मुनाफा बढ़ाना। यह पहले ही कितना नीचे गिर चुकी है उसे नीचे की तालिका दिखाती है:

तालिका-5

वैश्विक धन सम्पदा का संकेन्द्रण

धन सम्पदा (अमेरिकी डालर)	वैश्विक जन संख्या का प्रतिशत	वयस्कों की संख्या (करोड़)	वैश्विक धन सम्पदा का प्रतिशत	कुल धन सम्पदा (हजार अरब डालर)
< 10000	68.7	320.7	3.0	7
10000-100000	22.9	106.6	13.7	33
100000-1000000	7.7	36.1	42.3	102
> 1000000	0.7	3.2	41.0	99

स्रोत: OXFAM- WORKING FOR THE FEW, table-1

यह तालिका दिखाती है कि दुनिया की ऊपर की दस प्रतिशत आबादी के पास कुल धन सम्पदा का 85 प्रतिशत से भी ज्यादा हिस्सा है। इसके मुकाबले नीचे की दो तिहाई आबादी के पास महज तीन प्रतिशत। गौर तलब बात यह है कि संकट के इन सालों में

जहां मजदूर वर्ग एवं अन्य मेहनतकश जनता की हालत खराब हुयी है वहीं बड़े धन्ना सेठों की दौलत में और भी तेजी से बढ़ोत्तरी हुयी है। मार्च 2009 में दुनिया में कुल 793 अरबपति (अमेरिकी डॉलर में) थे जिनकी संख्या मार्च 2014 में 1645 हो गयी। अमेरिका में सबसे धनी 400 लोगों की दौलत 2009 में 1620 अरब डॉलर से बढ़कर 2014 में 2000 अरब डॉलर हो गई।

हालात इतने गंभीर हो रहे हैं कि ऑक्सफैम जैसी साम्राज्यवादी दान-दाता संस्थाएं इस पर अभियान चला रही हैं। स्वयं वित्तीय सट्टेबाज सरकारों से आग्रह कर रहे हैं कि इस दिशा में कुछ किया जाय। इस पर लिखी गयी एक सतही किताब बेस्ट सेलर बन गई है।

पर जैसा कि पिछले सात सालों ने दिखाया है और जैसा कि साम्राज्यवादियों की संस्थाएं प्रस्तावित कर रही हैं, पूंजीपति वर्ग उसी दिशा में आगे बढ़ेगा जिस दिशा में वह पिछले चार दशकों से चलता रहा है। और उसकी यह दिशा और ज्यादा गंभीर संकट के दलदल में उसे ले जायेगी भले ही तात्कालिक तौर पर वह मजदूर-मेहनतकश वर्ग को और ज्यादा निचोड़ने में कामयाब हो जाये।

कहने की बात नहीं कि यह स्थिति उस चीज को जन्म देगी जिसके लिए 2011-12 के विद्रोह महज कुछ फुलझड़ियां साबित होंगे। उसकी गंभीरता और व्यापकता पहले से बहुत ज्यादा ऊंचे स्तर की होगी। यह मजदूर वर्गीय इंकलाब के लिए संभावनाओं के नये-नये द्वार खोल देगी।

■■■